Original Article
ISSN(Online): 3139-4434
https://ijeagr.com/

International Journal of Educational Analysis and Global Research
International Open Access, Peer-Reviewed, Refereed Journal
Volume 01, Issue 03, August 2026

रामानंदीय शिष्य- परंपरा में राम- भक्ति

डॉ. प्रद्युम्न सिंह
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, हण्डिया पी जी कॉलेज हण्डिया प्रयागराज -221503
Email: -pradumncic@gmail.com

Received 25 July 2026
Accepted 01 August 2026
Published 08 August 2026
Corresponding Author:
डॉ. प्रद्युम्न सिंह
Email: pradumncic@gmail.com
Doi: https://doi.org/10.64880/ijeagr.v1i3.08
Funding: This research received no specifics grant from any funding agency in the public, commercial, or not-for-profit sector.
Copyright: © 2026 The Author(s). This is an open access article under the Creative Commons Attribution-Noncommercial 4.0 International License.

OPEN ACCESS

सारांश:

शोध -लेख में रामानंदीय शिष्य-परंपरा के आलोक में राम-भक्ति की वैचारिक, आध्यात्मिक तथा सामाजिक परंपरा का समग्र अध्ययन किया गया है। इसमें स्पष्ट किया गया है कि स्वामी रामानंद ने राम-भक्ति को संकीर्ण धार्मिक सीमाओं से मुक्त कर उसे लोककल्याण, सामाजिक समता और मानवीय एकता का आधार बनाया। उनके शिष्यों एवं परवर्ती संतों—विशेषतः कबीर, संत रविदास, गुरु नानक तथा दादू दयाल—ने गुरु-परंपरा से प्राप्त राम-भक्ति को निर्गुण ब्रह्म, आत्मानुभूति, प्रेम, सद्भाव और सामाजिक समरसता के व्यापक संदर्भ में विकसित किया। इस अध्ययन में यह भी प्रतिपादित किया गया है कि इन संतों के लिए 'राम' किसी ऐतिहासिक या सांप्रदायिक सीमा में बँधा नाम नहीं, बल्कि सर्वव्यापक, निराकार एवं सार्वभौमिक परमसत्ता का प्रतीक है। उन्होंने बाह्य आडंबर, जाति-भेद, कर्मकांड और धार्मिक संकीर्णता का विरोध करते हुए अंतःकरण की पवित्रता, सद्गुरु की महत्ता तथा निष्काम भक्ति को मुक्ति का वास्तविक मार्ग माना। शोध का निष्कर्ष यह है कि रामानंदीय शिष्य-परंपरा ने भारतीय भक्ति आंदोलन को व्यापक जनाधार प्रदान किया तथा हिंदी संत साहित्य को ऐसी मानवीय और समन्वयवादी दृष्टि दी, जो आज भी सामाजिक सौहार्द, समानता और आध्यात्मिक चेतना के लिए अत्यंत प्रासंगिक है।

बीज शब्द : *रामानंद, रामानंदीय शिष्य-परंपरा, राम-भक्ति, भक्ति आंदोलन, संत परंपरा, कबीर, संत रविदास, गुरु नानक, दादू दयाल, निर्गुण भक्ति, निर्गुण ब्रह्म, राम-नाम, सद्गुरु, सामाजिक समरसता, धार्मिक समन्वय, एकेश्वरवाद, लोकमंगल, आत्मानुभूति, हिंदी संत साहित्य, मध्यकालीन हिंदी साहित्य।*

भूमिका:-

भारतीय चिंतन परंपरा में भक्ति ने सदैव व्यक्ति और समाज के मध्य एक सेतु का कार्य किया है। मध्यकालीन भारत का सामाजिक परिवेश अनेक प्रकार की विषमताओं, धार्मिक रूढ़ियों, जातिगत विभाजनों तथा कर्मकांडों से प्रभावित था। ऐसी परिस्थितियों में भक्ति आंदोलन ने धर्म को लोकजीवन से जोड़ते हुए मानव-मात्र की समानता, प्रेम, करुणा और आध्यात्मिक स्वतंत्रता का संदेश दिया। इस सांस्कृतिक चेतना के निर्माण में स्वामी रामानंद का योगदान अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। उन्होंने भक्ति को किसी विशेष वर्ग या संप्रदाय की सीमा से मुक्त कर जनसाधारण तक पहुँचाया तथा यह स्थापित किया कि ईश्वर की प्राप्ति का मार्ग जन्म, जाति अथवा बाह्य आचरण से नहीं, बल्कि निष्कपट श्रद्धा, सदाचार और आंतरिक शुद्धता से प्रशस्त होता है। यही उदार दृष्टि आगे चलकर रामानंदीय शिष्य-परंपरा की आधारशिला बनी।

How to cite this article: सिंह, डॉ. प्रद्युम्न. (2026). रामानंदीय शिष्य- परंपरा में राम- भक्ति. International Journal of Educational Analysis and Global Research, 01(3). Page No.63-68. **DOI:** https://doi.org/10.64880/ijeagr.v1i3.08

रामानंदीय शिष्य-परंपरा ने भारतीय भक्ति आंदोलन और हिंदी संत साहित्य को नई वैचारिक दिशा प्रदान की। कबीर, संत रविदास, गुरु नानक, दादू दयाल तथा अन्य संतों ने अपने आध्यात्मिक अनुभवों के आधार पर राम-भक्ति को व्यापक मानवीय संदर्भों में व्याख्यायित किया। उनके लिए 'राम' किसी संकीर्ण धार्मिक पहचान का प्रतीक नहीं, बल्कि समस्त सृष्टि में व्याप्त सार्वभौमिक चेतना का बोधक है। इस परंपरा ने सामाजिक समरसता, धार्मिक समन्वय, आत्मानुभूति, सद्गुरु की महत्ता तथा लोकमंगल को भक्ति का मूल आधार माना। प्रस्तुत शोध-पत्र में रामानंदीय शिष्य-परंपरा के प्रमुख संतों के काव्य एवं विचारों के आलोक में राम-भक्ति के स्वरूप, उसके दार्शनिक आधार, सामाजिक प्रभाव तथा हिंदी संत साहित्य में उसके योगदान का विश्लेषणात्मक अध्ययन किया गया है। यह अध्ययन इस तथ्य को रेखांकित करता है कि रामानंदीय परंपरा आज भी समानता, सह-अस्तित्व और मानवीय मूल्यों की स्थापना के लिए प्रेरणादायी एवं प्रासंगिक बनी हुई है।

मध्यकालीन भारतीय भक्ति आंदोलन के विकास में स्वामी रामानंद का योगदान अत्यंत महत्त्वपूर्ण माना जाता है। उन्होंने राम-भक्ति को केवल धार्मिक साधना तक सीमित न रखकर उसे सामाजिक समरसता और लोककल्याण का प्रभावी माध्यम बनाया। उस समय समाज में व्याप्त जातिगत विभाजन और ऊँच-नीच की भावना के बीच रामानंद ने यह प्रतिपादित किया कि ईश्वर की कृपा और भक्ति पर प्रत्येक मनुष्य का समान अधिकार है। इसी उदार दृष्टिकोण के कारण उनकी शिक्षाएँ समाज के विभिन्न वर्गों तक पहुँचीं और राम-भक्ति को व्यापक जनस्वीकृति प्राप्त हुई।

भारतीय संत परंपरा के विकासक्रम में प्रारंभिक संतों में नामदेव का विशेष स्थान स्वीकार किया जाता है। महाराष्ट्र से संबद्ध नामदेव ने अपने व्यापक भ्रमण तथा लोकजागरण के माध्यम से सामाजिक भेदभाव का विरोध किया और सर्वव्यापी परम सत्ता की उपासना का संदेश दिया। उनके पश्चात त्रिलोचन, सदना, बैनी तथा स्वामी रामानंद ने इस संत परंपरा को आगे बढ़ाया। इनमें रामानंद का व्यक्तित्व विशेष रूप से उल्लेखनीय है, क्योंकि उन्होंने वैष्णव साधना को सामाजिक समानता के आदर्श से जोड़ा। यद्यपि वे स्मार्त वैष्णव परंपरा से संबद्ध थे, फिर भी उन्होंने जाति-आधारित भेदभाव को स्वीकार नहीं किया और सभी वर्गों के लोगों के लिए भक्ति के द्वार समान रूप से खोल दिए। कबीर, रैदास, सेन, पीपा आदि विविध सामाजिक पृष्ठभूमियों से आए शिष्यों को स्वीकार कर उन्होंने यह सिद्ध किया कि भक्ति का वास्तविक आधार जन्म या जाति नहीं, बल्कि श्रद्धा, साधना और आंतरिक शुद्धता है। यही कारण है कि रामानंद की शिष्य परंपरा ने राम-भक्ति के प्रसार के साथ-साथ हिंदी संत साहित्य और संत काव्यधारा को नई दिशा, व्यापकता और वैचारिक गहराई प्रदान की। **1**

रामानंद की शिष्य-परंपरा भारतीय संत परंपरा की एक अत्यंत प्रभावशाली धारा रही, जिससे प्रेरित होकर कबीर के अतिरिक्त धर्मदास, गुरु नानक, शेख फरीद, मलूकदास, दादूदयाल, धरनीदास, रैदास, रज्जब, सुंदरदास, यारी साहब, दरिया साहब, जगजीवनदास, चरणदास, सहजोबाई, तुलसीदास तथा पलटूदास सहित अनेक संतों ने अपनी आध्यात्मिक अनुभूतियों और लोकमंगलकारी विचारों को जनसाधारण तक पहुँचाया। इन संतों ने बाह्य आडंबर, कर्मकांड, माया-मोह, धनलोलुपता, कामासक्ति, जातिगत भेदभाव तथा पाखंडपूर्ण धार्मिक आचरण का विरोध करते हुए संयम, दया, क्षमा, संतोष, सत्य, सदाचार और ईश्वर के प्रति अटूट आस्था को जीवन का वास्तविक आधार माना। उन्होंने मानव-मानव के बीच समता, प्रेम, सद्भाव और सामाजिक समरसता की स्थापना पर बल दिया तथा निर्गुण-निराकार ब्रह्म की उपासना को आत्मानुभूति का सर्वोत्तम मार्ग स्वीकार करते हुए मंदिर-मस्जिद की बाह्य सीमाओं से अधिक अंतःकरण की पवित्रता को महत्त्व प्रदान किया। यद्यपि प्रत्येक संत ने अपने-अपने ढंग से समाज और अध्यात्म को नई दिशा दी, तथापि निर्भीकता, तार्किकता, प्रखरता और व्यापक जनस्वीकार्यता की दृष्टि से कबीर की वाणी सर्वाधिक प्रभावशाली सिद्ध हुई, जिसने धार्मिक रूढ़ियों, सामाजिक विषमताओं और पाखंड पर तीक्ष्ण प्रहार करते हुए भारतीय संत साहित्य को एक विशिष्ट वैचारिक ऊँचाई प्रदान की। **2**

कबीर की वाणी अनुभवजन्य सत्य, गहन आध्यात्मिक ज्ञान, सशक्त कल्पनाशीलता तथा दीर्घ साधना का सजीव समन्वय प्रस्तुत करती है। उनकी अभिव्यक्ति केवल दार्शनिक चिंतन तक सीमित नहीं रहती, बल्कि जीवनानुभव की प्रामाणिकता से अनुप्राणित होकर सीधे मानव-हृदय को स्पर्श करती है। इसी कारण उनकी वाणी अन्य संत कवियों की अपेक्षा अधिक प्रभावोत्पादक, संवेदनापूर्ण, मार्मिक और कालजयी प्रतीत होती है। **3**

डॉ. प्रद्युम्न सिंह

कबीर की सबसे बड़ी विशिष्टता उनकी समन्वयवादी दृष्टि में निहित है। उनके चिंतन में जहाँ एक ओर अद्वैतवाद की दार्शनिक चेतना विद्यमान है, वहीं दूसरी ओर सूफ़ी मत की प्रेममय साधना का गहरा प्रभाव भी परिलक्षित होता है। उनके व्यक्तित्व में इस्लाम के एकेश्वरवाद की भावना स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त होती है। इसके साथ ही नाथ एवं सिद्ध परंपरा की हठयोग-साधना, सहजयान की सहज अनुभूति तथा स्वामी रामानंद की भक्ति-परंपरा और रामनाम-केंद्रित साधना ने भी उनके विचारों को समृद्ध किया। बौद्ध दर्शन के मध्यम मार्ग, निरंजनी साधुओं की आध्यात्मिक साधना तथा तांत्रिक परंपरा के कुछ तत्त्व भी उनके चिंतन में समाहित दिखाई देते हैं। वस्तुतः कबीर ने किसी एक मत या संप्रदाय की सीमाओं में स्वयं को सीमित नहीं रखा, बल्कि विभिन्न धार्मिक, दार्शनिक और आध्यात्मिक परंपराओं के श्रेष्ठ तत्त्वों का विवेकपूर्ण समन्वय कर एक ऐसे व्यापक लोकधर्मी दर्शन का प्रतिपादन किया, जो मानवता, समरसता और सार्वभौमिक आध्यात्मिक चेतना का सशक्त प्रतीक बन गया।

कबीर ने निर्गुण भक्ति के माध्यम से समाज में व्याप्त धार्मिक संकीर्णता, सांप्रदायिक वैमनस्य तथा पारस्परिक कटुता को समाप्त करने का सार्थक प्रयास किया। उन्होंने ऐसी समन्वयवादी भक्ति का प्रतिपादन किया, जिसमें राम और रहीम, कृष्ण और करीम, महादेव और मोहम्मद के बीच किसी प्रकार का भेद स्वीकार नहीं किया गया। उनके अनुसार समस्त सृष्टि का आधार एक ही परम सत्ता है, जिसकी उपासना विभिन्न नामों और रूपों में की जाती है। कबीर के मत में ईश्वर तर्क-वितर्क का विषय नहीं, बल्कि आत्मानुभूति का प्रत्यक्ष सत्य है। वही परम ब्रह्म सम्पूर्ण पिंड और ब्रह्मांड में समान रूप से व्याप्त होकर समस्त सृष्टि का संचालन करता है। निर्गुण राम उनके लिए निराकार, सर्वव्यापक तथा चेतन सत्ता के प्रतीक हैं, जो प्रत्येक जीव के अंतःकरण में विद्यमान हैं। कबीर ने आत्मा और परमात्मा के संबंध को पति-पत्नी के आध्यात्मिक प्रेम के रूपक द्वारा अभिव्यक्त करते हुए कहा कि जैसे पत्नी अपने पति में पूर्णतः एकाकार हो जाती है, उसी प्रकार साधक का अंतिम लक्ष्य परमात्मा में आत्म-विलय प्राप्त करना है। यही उनकी साधना का सर्वोच्च आदर्श है।

दुल्हिन गावहु मंगल चार।

हम घर आये राजा राम भरतार।। 4

रामानंद के आध्यात्मिक सान्निध्य के कारण कबीर के व्यक्तित्व में वैष्णव परंपरा के प्रति विशेष आदरभाव था। **5** अंततः संत कवियों ने राम-भक्ति की परंपरा को समृद्ध किया, किंतु कबीर ने राम को सगुण रूप में स्वीकार करने के स्थान पर निर्गुण ब्रह्म के प्रतीक के रूप में प्रतिष्ठित किया। वे निराकार सत्ता के उपासक थे और उनका मानना था कि परम सत्य की अनुभूति ज्ञान के माध्यम से ही संभव है। उनके अनुसार ईश्वर प्रत्येक जीव के अंतःकरण में विद्यमान है; अतः उसे बाह्य जगत में खोजने की आवश्यकता नहीं है। इसी भाव को व्यक्त करते हुए वे कहते हैं— "हिरदै सरोवर है अविनाशी।" यद्यपि कबीर ने अपनी वाणी में 'राम' नाम का बार-बार प्रयोग किया है, तथापि उनका 'राम' अयोध्या के राजा दशरथ के पुत्र नहीं, बल्कि परम ब्रह्म का द्योतक है। वे परम सत्ता के स्मरण हेतु 'राम' नाम को एक सांकेतिक अभिव्यक्ति के रूप में ग्रहण करते हैं। इस संदर्भ में उनका प्रसिद्ध कथन है—

दशरथ सुत तिहुँ लोक बखाना।

राम नाम का मरम है आना।। 6

कबीर एकेश्वरवाद के समर्थक हैं, किंतु उनकी एकेश्वरवादी अवधारणा इस्लामी एकेश्वरवाद से भिन्न है। इस्लाम में ईश्वर को सृष्टि से परे, सर्वशक्तिमान और स्वतंत्र सत्ता के रूप में स्वीकार किया गया है, जबकि कबीर के अनुसार परमात्मा समस्त चराचर जगत में व्याप्त है तथा प्रत्येक प्राणी के अंतःकरण में विद्यमान है। वह इंद्रियों की पहुँच से परे, अवर्णनीय और अगोचर सत्ता है। कबीर का मत है कि परमात्मा का साक्षात्कार केवल शास्त्रों अथवा पुराणों के अध्ययन से संभव नहीं, बल्कि निष्काम प्रेम और अनन्य भक्ति के माध्यम से ही उसकी अनुभूति की जा सकती है। निर्गुण राम की उनकी अवधारणा तथा प्रेमप्रधान भक्ति-दृष्टि उन्हें सिद्धों और नाथों की साधना-परंपरा से पृथक करती है। यही कारण है कि उनकी वाणी में दार्शनिक गहनता के साथ-साथ भावात्मक सरसता भी दृष्टिगोचर होती है। कबीर के काव्य में रहस्यवाद के विविध स्वरूपों का सशक्त एवं समन्वित निरूपण मिलता है।

गुरु नानक देव की वाणी अपनी विलक्षण प्रेरणात्मक शक्ति के कारण विशिष्ट स्थान रखती है। मध्यकालीन संतों की वाणी की तुलना में उनकी अभिव्यक्ति में निहित आध्यात्मिक जागरण और लोकमंगल की चेतना अत्यंत प्रभावशाली एवं अद्वितीय प्रतीत होती है। आचार्य हजारी प्रसाद इस संबंध में लिखते हैं-जिनवाणियों से मनुष्य के अंदर इतना बड़ा अपराजेय आत्मबल और कभी समाप्त न होने वाला साहस प्राप्त हो सकता है, उनकी महिमा नि:संदेह अतुलनीय है। सच्चे हृदय से निकले हुए भक्त के अत्यंत सीधे उद्गार और सत्य के प्रति दृढ़ रहने के उपदेश कितने शक्तिशाली हो सकते हैं, यह नानक की वाणियों ने स्पष्ट कर दिया है। **7**

दादू दयाल की वाणी का संरक्षण एवं संकलन उनके शिष्यों द्वारा अत्यंत श्रद्धा और व्यवस्थित रूप से किया गया, जिसके परिणामस्वरूप उनकी शिक्षाएँ और पद मुख्यतः 'हरडे वाणी' तथा 'अंगवधू' नामक ग्रंथों में सुरक्षित रूप से उपलब्ध हैं। कालांतर में दादू साहित्य के संपादन एवं प्रकाशन की परंपरा का व्यापक विकास हुआ और अजमेर, काशी, जयपुर तथा प्रयाग से उनके वाङ्मय के अनेक प्रामाणिक संकलन प्रकाशित हुए। प्रसिद्ध विद्वान क्षितिमोहन सेन ने बांग्ला भाषा में 'दादू' शीर्षक से एक महत्त्वपूर्ण अध्ययन-ग्रंथ की रचना की, जिसमें दादू दयाल के जीवन, व्यक्तित्व, काव्य और दर्शन का प्रामाणिक एवं समीक्षात्मक विवेचन प्रस्तुत किया गया है। दादू दयाल की रचनाओं की संख्या सामान्यतः लगभग बीस हजार मानी जाती है, किंतु अधिकांश विद्वानों का मत है कि यह संख्या मुख्यतः उनके पदों से संबंधित है तथा इसकी ऐतिहासिक प्रामाणिकता पूर्णतः निर्विवाद नहीं कही जा सकती। उनकी काव्यभाषा राजस्थानी-प्रभावित पश्चिमी हिंदी है, जिसमें अरबी और फ़ारसी मूल के शब्दों का पर्याप्त प्रयोग मिलता है। यद्यपि उनकी वाणी में कबीर जैसी तीक्ष्ण वाग्विदग्धता और प्रखर व्यंग्यात्मकता का स्वर अपेक्षाकृत कम दिखाई देता है, तथापि उसमें विचारों की गंभीरता, अनुभूति की गहनता, आध्यात्मिक चेतना, सहज अभिव्यक्ति तथा मानवीय समरसता का प्रभाव अत्यंत सशक्त रूप में विद्यमान है, जिसके कारण दादू दयाल की वाणी हिंदी संत साहित्य की अमूल्य धरोहर के रूप में प्रतिष्ठित है।

कबीर की भाँति संत रविदास भी परंपरागत शास्त्रीय दर्शन के कायल न होकर स्वतंत्र चिंतन के समर्थक थे। उनके काव्य के दार्शनिक मूल्यांकन के संदर्भ में अनेक विद्वानों ने उन्हें अद्वैतवादी, ब्रह्मवादी अथवा समन्वयवादी के रूप में निरूपित किया है, किंतु उनके साहित्य के समग्र अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि संत रविदास मूलतः संत थे, शास्त्रीय अर्थों में दार्शनिक नहीं। यद्यपि उन्होंने व्यापक देशाटन किया, विभिन्न धार्मिक एवं सांस्कृतिक परंपराओं का साक्षात्कार किया तथा अनेक अवसरों पर ब्राह्मण विद्वानों के साथ शास्त्रार्थ भी किए, फिर भी उनका उद्देश्य किसी स्वतंत्र दार्शनिक मत का प्रतिपादन करना नहीं था। प्रसंगानुकूल उन्होंने ब्रह्म, जीव और जगत के संबंध में अपने विचार अवश्य व्यक्त किए, किंतु वे उनकी आध्यात्मिक अनुभूति और संत-दृष्टि की स्वाभाविक अभिव्यक्ति हैं। वस्तुतः संत रविदास की संपूर्ण वाणी का मूल प्रयोजन ईश्वर की निष्कपट भक्ति, मानवीय समता, आत्मानुभूति तथा लोकमंगल की प्रतिष्ठा है; अतः उनके चिंतन को दार्शनिक वाद-विवाद की अपेक्षा संत-परंपरा की अनुभवसिद्ध आध्यात्मिक चेतना के आलोक में समझना अधिक समीचीन प्रतीत होता है।

संत रविदास द्वारा प्रतिपादित ब्रह्म का स्वरूप मूलतः निर्गुण एवं निराकार है। यद्यपि उनकी वाणी में कहीं-कहीं ब्रह्म का क्रियात्मक स्वरूप ऐसा प्रतीत होता है, जो उसे सगुण-निराकार के रूप में अभिव्यक्त करता है। उनके ब्रह्म का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण गुण शरणागत का उद्धार एवं संरक्षण करना है। संभवतः इसी आधार पर कुछ विद्वानों ने संत रविदास को सगुण भक्ति का समर्थक माना है। उनके आरंभिक पदों में इस प्रकार की प्रवृत्ति के कुछ संकेत अवश्य प्राप्त होते हैं, किंतु श्री गुरु ग्रंथ साहिब में संकलित उनकी प्रमाणिक वाणी तथा परवर्ती रचनाओं के आधार पर स्पष्ट होता है कि संत रविदास का ब्रह्म मूलतः निर्गुण एवं निराकार है। भक्त की भावनात्मक अनुभूति के कारण वही निराकार ब्रह्म सगुण रूप में अनुभव किया जाता है।

संत रविदास ने परमात्मा को घट-घट में व्याप्त, सर्वव्यापक एवं सर्वान्तर्यामी सत्ता के रूप में स्वीकार किया है। उनके अनुसार वही एक परम सत्य विभिन्न समुदायों द्वारा कृष्ण, करीम, राम, रहीम अथवा खुदा जैसे विविध नामों से संबोधित किया जाता है। नामों की भिन्नता के बावजूद उसका स्वरूप एक ही है। ईश्वर की इसी सर्वव्यापक सत्ता का वर्णन करते हुए संत रविदास कहते हैं—

घट-घट तिह पेखियत अइसे,जल मंहि लहिर जल जइसे।

कह रविदास हरि सरब बिआपक,सरब व्यंतामणि सरब प्रतिपालक।।

सुरत शब्द जउ एक हों, तउ पाइहिं परम अनंद।

रविदास अंतर दीपक जरई, घट उपजई ब्रह्म अनंद।। 8

संत रविदास के अनुसार परमात्मा शरीर-रूपी नगर में सदैव विद्यमान रहता है। वह प्रत्येक प्राणी के हृदय में निवास करने वाली सर्वव्यापक एवं सर्वान्तर्यामी सत्ता है। परमात्मा की इसी सर्वव्यापकता का वर्णन करते हुए संत रविदास कहते हैं—

"मुकुर माहि परछाईं ज्यों, पुहुप मध्य ज्यों बास।

तैसउ ही श्रीहरि बसै, हिरदै मधे 'रविदास'।। 9

इसी भाव को आगे बढ़ाते हुए संत रविदास स्पष्ट शब्दों में कहते हैं—

"रविदास हमारो राम जी, दसरथ करि सुत नाहिं।

राम हमउ महि रमि रह्यो, बिसब कुटुंबहि माहिं।।

रविदास हमारो राम तो, सकल रह्यो भरपूरि।

रोम-रोम मंहि रमि रह्यो, राम मसूक न दूरि।। 10

संत रविदास के अनुसार जिस परमात्मा की खोज मनुष्य मंदिर, मस्जिद, गुरुद्वारे अथवा अन्य बाह्य उपासना-स्थलों में करता है, उसका वास्तविक स्वरूप बाह्य जगत में नहीं, बल्कि आत्मा के अंतर्मन में विद्यमान है। वह 'शब्द' और 'सुरति' के आध्यात्मिक अनुभव के रूप में उपलब्ध होता है, जिसकी प्राप्ति केवल सद्गुरु की कृपा से संभव है। जब साधक को उस परम सत्ता का साक्षात्कार हो जाता है, तब उसकी अनुभूति शब्दातीत हो जाती है; उसका पूर्ण वर्णन वाणी द्वारा संभव नहीं रह जाता। इसी भाव को व्यक्त करते हुए संत रविदास परमात्मा की स्थिति का वर्णन इस प्रकार करते हैं—

"जापै कृपा होई भल जाने, गूंगों सा गुर कहा बखानै।

सुन्न मंडल में मेरा बास, तांते जीव मैं रहूँ उदास।

कहै रैदास निरंजन ध्याऊँ, जिस पर जाय बहुरि नहिं आऊँ।। 11

अर्थात संत रविदास के मतानुसार परमात्मा को बाह्य जगत में खोजने का प्रयास केवल भ्रम उत्पन्न करता है। लोग उसे मंदिर, मस्जिद, तीर्थ अथवा अन्य बाह्य उपासना-स्थलों में खोजते हैं, जबकि वह प्रत्येक जीव के अंतःकरण में विद्यमान है। उसका साक्षात्कार लौकिक नेत्रों से नहीं, बल्कि अंतर्दृष्टि, आत्मानुभूति और सद्गुरु की कृपा से ही संभव है। इस प्रकार संत रविदास का ब्रह्म निर्गुण, निराकार, सर्वव्यापक तथा सर्वान्तर्यामी है।

रामानंद और उनकी शिष्य-परंपरा ने भारतीय भक्ति आंदोलन को व्यापक जनाधार प्रदान किया तथा रामभक्ति को जन-जन तक पहुँचाया। उन्होंने भक्ति को जाति, वर्ण और सामाजिक बंधनों से मुक्त कर एक सरल, सहज और सर्वसुलभ साधना-पद्धति के रूप में प्रतिष्ठित किया। संत रविदास, कबीर तथा अन्य संतों ने अपने गुरु रामानंद से प्राप्त इसी उदार एवं समन्वयवादी दृष्टि को आगे बढ़ाया। परिणामस्वरूप भक्ति केवल धार्मिक साधना न रहकर सामाजिक समरसता, समानता, प्रेम, करुणा और मानवीय एकता का सशक्त माध्यम बन गई। रामानंद की शिक्षाएँ आज भी समान रूप से प्रासंगिक हैं और मानवता, समता तथा आध्यात्मिक सौहार्द के मूल्यों को अपनाने की प्रेरणा प्रदान करती हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. डॉ .परशुराम चतुर्वेदी, उत्तर भारत की संत परंपरा, पृष्ठ -30

2. वही, पृष्ठ -30

3. वही, पृष्ठ -37

4. कबीर वानी, पारस प्रकाशन इलाहाबाद, पृष्ठ -50

5. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ -335

6. डॉ शिवकुमार शर्मा, हिंदी साहित्य युग और प्रवृतियां, अशोक प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ -138

7. वही, पृष्ठ -138

8. डॉ वेणी प्रसाद शर्मा,संत गुरु रविदास वाणी, पृष्ठ -18

9. डॉ पद्म गुरुचरण सिंह, संत रविदास, विचारक और कवि, पृष्ठ -26

10. डॉ धर्मपाल मैनी, रैदास साहित्य अकादमी, नई दिल्ली, पृष्ठ -42

11. वही, पृष्ठ -45

Disclaimer/Publisher's Note: The views, findings, and opinions expressed in this publication are solely those of the author(s). The publisher and editorial team are not responsible for any errors, claims, or consequences arising from the use of the published content.